Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2
ISSN No: 3049-4176

# हरियाणा में कृषि ऋण व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

**सर्वजीत**

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर–124021, रोहतक

**डॉ. अशोक कुमार**

शोध निर्देशक, प्रोफेसर इतिहास, विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय अस्थल बोहर–124021, रोहतक

**शोध सार:**

यह अध्ययन हरियाणा में कृषि ऋण व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विकास प्रक्रिया तथा इसके सामाजिक–आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शोध में विशेष रूप से 1966 के बाद की परिस्थितियों का अध्ययन किया गया है। 1966 में हरियाणा राज्य के गठन तथा हरित क्रांति की शुरुआत ने कृषि संरचना में व्यापक परिवर्तन किए, जिससे कृषि उत्पादन, तकनीकी विकास तथा पूंजी की आवश्यकता में वृद्धि हुई। हरित क्रांति से पूर्व कृषि व्यवस्था मुख्यतः पारंपरिक, वर्षा आधारित एवं आत्मनिर्भर थी तथा किसान साहूकारों और महाजनों जैसे असंस्थागत स्रोतों पर निर्भर थे, जिससे शोषण, उच्च ब्याज दर और ऋणग्रस्तता जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुईं। 1966 के पश्चात सरकार द्वारा सहकारी समितियों, भूमि विकास बैंकों, राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा छ।ठ।त्क जैसी संस्थाओं के माध्यम से संस्थागत ऋण प्रणाली को सुदृढ़ किया गया। किसान क्रेडिट कार्ड, ब्याज सब्सिडी, फसल बीमा तथा ऋण माफी योजनाओं ने किसानों की ऋण उपलब्धता और आर्थिक स्थिति में सुधार किया। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कृषि ऋण व्यवस्था ने हरियाणा की कृषि उत्पादकता, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, तकनीकी आधुनिकीकरण तथा किसानों के जीवन स्तर में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साथ ही, यह भी पाया गया कि संस्थागत ऋण व्यवस्था के विस्तार के बावजूद कुछ संरचनात्मक चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं।

**मुख्य शब्द:** कृषि ऋण व्यवस्था, हरियाणा, हरित क्रांति, सहकारी समितियाँ, भूमि विकास बैंक, संस्थागत ऋण, असंस्थागत ऋण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, कृषि आधुनिकीकरण।

हरियाणा में कृषि ऋण व्यवस्था की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए हमें 1966 से पूर्व और पश्चात की परिस्थितियों को अलग–अलग अध्ययन करना आवश्यक है। 1966 का वर्ष हरियाणा और भारत दोनों के कृषि इतिहास में एक मील का पत्थर साबित हुआ। एक ओर हरियाणा पंजाब से अलग होकर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में अस्तित्व में आया, तो दूसरी ओर भारत में हरित क्रांति का आरंभ हुआ, जिसने पूरे कृषि तंत्र को वैज्ञानिक, यंत्रीकृत और अधिक उत्पादक बनाया। इस दोहरी घटना का सीधा असर हरियाणा की कृषि

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

अर्थव्यवस्था और विशेष रूप से ऋण व्यवस्था पर पड़ा। 1966 से पहले हरियाणा का अधिकांश भाग पंजाब के अंतर्गत आता था और वहाँ की खेती मुख्यतः परंपरागत तरीकों पर आधारित थी। खेती वर्षा और सीमित नहरों पर निर्भर थी। बीज और खाद पुराने किस्म के थे, उत्पादन क्षमता कम थी और अधिकतर किसान छोटे और सीमांत थे जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर थी। इस समय ऋण की आवश्यकता तो थी, लेकिन उसका स्वरूप सीमित और असंगठित था। किसान साहूकारों, महाजनों और रिश्तेदारों से ऊँचे ब्याज पर ऋण लेने को मजबूर थे। सहकारी समितियों और भूमि विकास बैंकों की स्थापना की शुरुआत हो चुकी थी, लेकिन उनका दायरा छोटा और प्रभाव सीमित था। इस कारण ऋण व्यवस्था में शोषण की प्रवृत्ति, भूमि गिरवी रखने की मजबूरी और किसानों की निर्भरता जैसी समस्याएँ व्याप्त थीं।[1] 1966 के बाद हरियाणा एक अलग राज्य बनने के साथ भारत की कृषि नीति के केंद्र में आया। हरित क्रांति ने कृषि तकनीकों में बड़े बदलाव लाए—उच्च उपज देने वाली किस्मों के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, सिंचाई के लिए ट्यूबवेल और नहरों का विस्तार और खेती में मशीनों का बढ़ता उपयोग। इन परिवर्तनों के लिए किसानों को अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ी। इस समय ऋण व्यवस्था का महत्व और भी बढ़ गया क्योंकि बिना वित्तीय सहयोग के ये तकनीकें अपनाना संभव नहीं था। सरकार ने इसे ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्तरों पर ऋण व्यवस्था को मजबूत किया। सहकारी समितियों का विस्तार हुआ, भूमि विकास बैंकों को सक्रिय किया गया, वाणिज्यिक बैंकों की ग्रामीण शाखाएँ खोली गईं और 1982 में नाबार्ड की स्थापना हुई, जिसने कृषि ऋण प्रवाह को संस्थागत आधार प्रदान किया। इस काल में सरकार और वित्तीय संस्थानों ने किसानों तक ऋण पहुँचाने के लिए कई योजनाएँ लागू कीं, जैसे किसान क्रेडिट कार्ड, ब्याज सब्सिडी योजनाएँ और ऋण माफी कार्यक्रम। इन कदमों ने न केवल किसानों की ऋण लेने की क्षमता बढ़ाई बल्कि उनके जीवन स्तर को भी बेहतर बनाया। इसके साथ ही फसल विविधीकरण, बागवानी, डेयरी, मत्स्य पालन और ग्रामीण उद्योगों के लिए भी ऋण उपलब्ध कराया जाने लगा, जिससे कृषि का दायरा और व्यापक हुआ।

## हरित क्रांति से पहले ऋण की स्थिति

हरित क्रांति से पहले हरियाणा की कृषि व्यवस्था काफी हद तक पारंपरिक और आत्मनिर्भर थी। उस समय यह क्षेत्र पंजाब का हिस्सा था और इसकी आर्थिक संरचना ग्रामीण एवं कृषि आधारित थी। खेती का प्रमुख आधार वर्षा और सीमित सिंचाई साधन थे। अधिकतर किसान छोटे और सीमांत थे, जिनके पास पर्याप्त भूमि या पूँजी नहीं थी। उत्पादन कम होता था

[1] दीपक, राठी (2017) *हरियाणा के पिछड़े जिलों में ऋण व्यवस्था और चुनौतियाँ*, रोहतक ग्रामीण अर्थशास्त्र शोध संस्थान, पृ. 58

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

और तकनीकी संसाधनों का अभाव था। इस स्थिति में कृषि ऋण की आवश्यकता तो थी, लेकिन उसका स्वरूप और पहुँच आज की तरह संगठित नहीं थी।[2]

**1. ऋण के स्रोत और उनकी प्रकृति:**

इस काल में ऋण मुख्यतः असंस्थागत स्रोतों से लिया जाता था। महाजन, साहूकार, जमींदार और निजी रिश्तेदार ही किसानों के प्रमुख ऋणदाता थे। इन स्रोतों से ऋण लेना आसान तो था, क्योंकि कागजी औपचारिकताओं की आवश्यकता नहीं होती थी, लेकिन यह अत्यंत महँगा और शोषणकारी था। ब्याज दरें बहुत ऊँची होती थीं, कई बार 24% से 36% वार्षिक तक। अक्सर किसान अपनी भूमि या उपज को गिरवी रखने को मजबूर होते थे।[3]

**2. संस्थागत स्रोतों की सीमित भूमिका:**

सहकारी समितियों और भूमि विकास बैंकों की स्थापना ब्रिटिश काल और स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती वर्षों में हुई थी, लेकिन इनकी पहुँच गाँवों तक सीमित थी। सदस्यता प्रक्रियाएँ जटिल थीं और छोटे किसानों को इससे बहुत कम लाभ मिल पाता था। इसके अलावा, पूँजी की कमी और प्रशासनिक दिक्कतों के कारण इन संस्थाओं का प्रभाव कमजोर रहा।

**3. ऋण की शर्तें और समस्याएँ:**

i. ऋण लेने की प्रक्रिया में पारदर्शिता का अभाव था।
ii. साहूकार ऋण देते समय भारी ब्याज वसूलते और अनुचित शर्तें लगाते थे।
iii. फसल खराब होने या प्राकृतिक आपदा की स्थिति में भी किसानों को समय पर राहत नहीं मिलती थी।
iv. ऋण चुकाने में असफल होने पर किसान सामाजिक और आर्थिक शोषण का शिकार होते थे।[4]

**4. खेती का स्वरूप और ऋण पर निर्भरता:**

उस समय की खेती कम उपजाऊ किस्मों, पारंपरिक औजारों और सीमित खाद–पानी पर आधारित थी। किसान अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए अधिकतर उधार पर निर्भर रहते थे। बीज, खाद, पशु चारा और घरेलू आवश्यकताओं के लिए भी साहूकारों से ऋण लिया जाता था। इस कारण ऋणग्रस्तता एक सामान्य समस्या थी, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती थी।

---

[2] मनीष कपूर (2018) *हरियाणा में कृषि निवेश और वित्तीय योजनाएँ,* गुड़गाँव नीति अध्ययन केंद्र, पृ. 95

[3] विजय चौहान (2019) *हरियाणा की कृषि अर्थव्यवस्था और ऋण प्रवाह,* अंबाला विकास प्रकाशन पृ. 50

[4] सीमा गुप्ता (2020) *हरियाणा में कृषि ऋण और सहकारिता आंदोलन,* रोहतक सहकारी अध्ययन संस्थान, पृ. 66

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

**5. सामाजिक और आर्थिक प्रभाव:**

ऋण व्यवस्था के असंगठित स्वरूप ने किसानों की आर्थिक स्थिति को कमजोर रखा। साहूकारों की पकड़ और ऊँचे ब्याज ने किसान समाज को कर्ज के जाल में फँसा दिया। कई बार भूमि हड़पने और बेदखली जैसी घटनाएँ होती थीं। इससे ग्रामीण समाज में असमानता बढ़ी और किसानों में असुरक्षा की भावना रही।[5]

**1966 के बाद हरित क्रांति और ऋण की बढ़ती मांग**

1966 का वर्ष हरियाणा के कृषि इतिहास में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ। इस वर्ष हरियाणा का गठन एक स्वतंत्र राज्य के रूप में हुआ और लगभग इसी समय भारत में हरित क्रांति की शुरुआत हुई। हरित क्रांति का मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादन में वृद्धि करना था, ताकि खाद्यान्न की कमी दूर की जा सके और देश आत्मनिर्भर हो सके। हरियाणा, अपनी उपजाऊ भूमि, सिंचाई की उपलब्धता और मेहनती किसानों के कारण इस क्रांति का प्रमुख केंद्र बना। इस नए दौर में खेती का स्वरूप पारंपरिक से बदलकर वैज्ञानिक, यंत्रीकृत और व्यावसायिक हो गया। लेकिन इस बदलाव के लिए पूँजी की आवश्यकता कई गुना बढ़ गई, जिससे कृषि ऋण व्यवस्था का महत्व पहले से कहीं अधिक हो गया। हरित क्रांति के दौर में उच्च उपज देने वाली किस्मों (HYV) के बीजों का उपयोग शुरू हुआ। साथ ही, उर्वरकों, कीटनाशकों, सिंचाई के साधनों और कृषि मशीनरी जैसे ट्रैक्टर, हार्वेस्टर और ट्यूबवेल की जरूरत पड़ी। इन सभी उपकरणों और संसाधनों के लिए किसानों को भारी पूँजी निवेश करना पड़ा। छोटे और सीमांत किसानों के लिए इतनी बड़ी राशि जुटाना संभव नहीं था, इसलिए ऋण लेना उनकी मजबूरी बन गई।

1966 के बाद सरकार ने कृषि ऋण प्रणाली को मजबूत करने के लिए कई कदम उठाए।

i. **सहकारी समितियाँ और भूमि विकास बैंक:** इन संस्थाओं का जाल गाँव–गाँव तक फैलाया गया।
ii. **राष्ट्रीयकृत बैंक:** 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद ग्रामीण शाखाओं की संख्या बढ़ी, जिससे किसानों को औपचारिक ऋण तक बेहतर पहुँच मिली।
iii. **नाबार्ड (NABARD):** 1982 में राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक की स्थापना की गई, जिसने बैंकों को पुनर्वित्त उपलब्ध कराकर कृषि ऋण के प्रवाह को बढ़ाया।
iv. **किसान क्रेडिट कार्ड योजना:** 1998 में शुरू की गई इस योजना ने किसानों को कम ब्याज पर और आसान प्रक्रिया के माध्यम से ऋण लेने की सुविधा दी।[6]

---

[5] देवेश, अग्रवाल (2017) *कृषि वित्त और ग्रामीण विकास हरियाणा के संदर्भ में,* करनाल राष्ट्रीय कृषि प्रकाशन, पृ. 39

[6] राधेश्याम तोमर, (2018) *हरियाणा में कृषि उत्पादन और ऋण प्रणाली,* हिसार कृषि अध्ययन केंद्र, पृ. 60

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2
ISSN No: 3049-4176

सरकार ने इस दौर में किसानों के लिए कई प्रोत्साहन योजनाएँ चलाईं। उर्वरकों पर सब्सिडी, सिंचाई परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता, फसल बीमा और ऋण माफी जैसी योजनाएँ शुरू की गईं। इन प्रयासों का उद्देश्य किसानों के लिए ऋण लेना आसान और सस्ता बनाना था, ताकि वे नई तकनीकें अपना सकें। ऋण व्यवस्था ने किसानों को नए संसाधनों में निवेश करने की क्षमता दी। इसका परिणाम यह हुआ कि गेहूँ और धान जैसी प्रमुख फसलों का उत्पादन कई गुना बढ़ा। हरियाणा देश के अन्न भंडार के रूप में स्थापित हुआ। किसानों की आय में सुधार हुआ और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिली। ऋण की उपलब्धता ने न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि की, बल्कि किसानों की जीवनशैली में भी बदलाव लाए। खेती में यंत्रीकरण और नई फसल प्रणालियों के कारण रोजगार के नए अवसर बने। साथ ही, फसल विविधीकरण, बागवानी, डेयरी और मत्स्य पालन जैसी गतिविधियों के लिए भी ऋण उपलब्ध होने लगा।[7]

**कृषि ऋण व्यवस्था के विकास में सरकारी नीतियों की भूमिका**

1966 के बाद हरियाणा की कृषि अर्थव्यवस्था में तेजी से बदलाव आए। हरित क्रांति के प्रभाव से खेती पारंपरिक ढाँचे से निकलकर आधुनिक और व्यावसायिक रूप लेने लगी। इस परिवर्तन को सफल बनाने के लिए सरकार की नीतियों और योजनाओं का विशेष योगदान रहा। ऋण व्यवस्था को मजबूत और व्यापक बनाने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों ने समय–समय पर कई पहलें कीं, जिनका उद्देश्य था–किसानों को पर्याप्त, सुलभ और सस्ती वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना।[8]

**संस्थागत ढाँचे का विस्तार और मजबूती:**

i. **सहकारी समितियाँ और भूमि विकास बैंक:** सरकार ने गाँव स्तर पर सहकारी समितियों का जाल फैलाया, जिससे किसान अपने क्षेत्र में ही ऋण और अन्य कृषि सुविधाएँ प्राप्त कर सकें। भूमि विकास बैंक विशेष रूप से दीर्घकालीन ऋण के लिए उपयोगी रहे, जिनसे भूमि सुधार, सिंचाई और कृषि यंत्रीकरण को बढ़ावा मिला।
ii. **राष्ट्रीयकृत बैंक और ग्रामीण शाखाएँ:** 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद, सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक शाखाएँ खोलने पर विशेष बल दिया। इससे किसानों की औपचारिक वित्तीय संस्थाओं तक पहुँच बढ़ी और साहूकारों पर निर्भरता कुछ कम हुई।

---

[7] तनुज, खत्री (2019) *हरियाणा के सिंचित और असिंचित क्षेत्रों में ऋण की स्थिति*, कुरुक्षेत्र ग्रामीण अर्थशास्त्र मंच, पृ. 47

[8] प्रिया भटनागर (2020) *हरियाणा में महिला किसानों के लिए वित्तीय सेवाएँ*, सोनीपत सामाजिक विज्ञान प्रकाशन, पृ. 58

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

iii. **नाबार्ड (NABARD):** 1982 में स्थापित नाबार्ड ने कृषि और ग्रामीण विकास के लिए एक महत्वपूर्ण वित्तीय संस्था के रूप में कार्य किया। इसने सहकारी और वाणिज्यिक बैंकों को पुनर्वित्त उपलब्ध कराकर ऋण प्रवाह बढ़ाया।[9]

**योजनाएँ और प्रोत्साहन कार्यक्रम:**

i. **किसान क्रेडिट कार्ड (KCC):** 1998 में शुरू की गई इस योजना ने किसानों को फसल ऋण के लिए सरल और तेज प्रक्रिया उपलब्ध कराई।

ii. **ब्याज सब्सिडी और रियायतें:** सरकार ने समय–समय पर ब्याज दरों में सब्सिडी प्रदान की, ताकि छोटे और सीमांत किसान भी ऋण का लाभ उठा सकें।

iii. **ऋण माफी योजनाएँ:** प्राकृतिक आपदाओं या फसल विफलता के समय किसानों की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए ऋण माफी योजनाएँ लागू की गईं।

iv. **फसल बीमा योजनाएँ:** प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना जैसी पहलें ऋण लेने वाले किसानों के लिए सुरक्षा कवच साबित हुईं, जिससे उनका जोखिम कम हुआ।

**ऋण के स्रोत**

हरियाणा में कृषि ऋण की व्यवस्था को सही रूप में समझने के लिए इसके स्रोतों का गहराई से अध्ययन करना अत्यंत आवश्यक है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि कृषि ऋण की उपलब्धता और उसके स्रोतों ने हरियाणा के किसानों की आर्थिक स्थिति और राज्य की कृषि उत्पादन प्रणाली को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। 1966 से 2020 के बीच हरियाणा की कृषि अर्थव्यवस्था में कई प्रकार के बदलाव आए। इस अवधि में हरित क्रांति, तकनीकी नवाचार, सिंचाई परियोजनाओं का विस्तार, फसल विविधीकरण और बाजार उन्मुख कृषि जैसे कारकों ने किसानों की पूँजीगत आवश्यकताओं को कई गुना बढ़ा दिया। ऐसे में, ऋण लेना किसानों के लिए केवल एक विकल्प नहीं रहा, बल्कि खेती को आधुनिक बनाने, जोखिम प्रबंधन करने और प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए यह एक अनिवार्य साधन बन गया।[10] इस संदर्भ में ऋण के स्रोतों की दो प्रमुख श्रेणियाँ सामने आती हैं: संस्थागत स्रोत और असंस्थागत स्रोत। दोनों की प्रकृति, कार्यप्रणाली, पहुँच और प्रभाव अलग–अलग हैं। इनका उपयोग समय, परिस्थिति और किसानों की आर्थिक स्थिति के अनुसार किया जाता रहा है।

---

[9] रमेश डांगी (2018) *कृषि ऋण वितरण और सहकारी सुधार हरियाणा अध्ययन,* पंचकूला सहकारी विकास संस्थान, पृ. 72

[10] विजय चौहान, (2019) *हरियाणा की कृषि अर्थव्यवस्था और ऋण प्रवाह,* अंबाला विकास प्रकाशन, पृ. 50

## संस्थागत स्रोत

संस्थागत स्रोत वे ऋणदाता हैं जो सरकार, सहकारी संस्थाओं, वाणिज्यिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और अन्य मान्यता प्राप्त वित्तीय संस्थानों के माध्यम से किसानों को ऋण उपलब्ध कराते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य है किसानों को संगठित, सुरक्षित, पारदर्शी और कानूनी ढाँचे में ऋण सुविधा प्रदान करना, ताकि वे बिना किसी शोषण के अपनी कृषि गतिविधियों के लिए आवश्यक पूँजी प्राप्त कर सकें। यह प्रणाली किसानों के लिए न केवल भरोसेमंद होती है, बल्कि दीर्घकालीन विकास और उत्पादन क्षमता बढ़ाने में भी सहायक साबित होती है।[11] 1966 के बाद हरियाणा की कृषि अर्थव्यवस्था में बड़े बदलाव आए। राज्य का गठन हुआ और उसी समय हरित क्रांति की शुरुआत ने खेती को परंपरागत तरीकों से हटाकर वैज्ञानिक और तकनीकी तरीकों की ओर अग्रसर किया। आधुनिक बीज, रासायनिक खाद, कीटनाशक, सिंचाई साधन, ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, ट्यूबवेल और अन्य यांत्रिक उपकरणों के उपयोग ने उत्पादन क्षमता को बढ़ाया, लेकिन इन सभी के लिए पूँजी की भारी आवश्यकता हुई। इस स्थिति में साहूकारों और महाजनों पर निर्भर रहना जोखिमपूर्ण था, क्योंकि उनकी ब्याज दरें अत्यधिक ऊँची होती थीं और शोषण की संभावना बनी रहती थी। इसी कारण सरकार और वित्तीय संस्थानों ने किसानों तक संगठित ऋण पहुँचाने की दिशा में ठोस कदम उठाए।[12] सहकारी समितियों के नेटवर्क को गाँव–गाँव तक फैलाया गया, भूमि विकास बैंकों को दीर्घकालीन ऋण के लिए सशक्त किया गया और 1969 के राष्ट्रीयकरण के बाद वाणिज्यिक बैंकों की ग्रामीण शाखाएँ तेजी से खोली गईं। 1982 में नाबार्ड की स्थापना ने इस व्यवस्था को और मजबूती दी, जिससे सहकारी और वाणिज्यिक बैंकों को पुनर्वित्त मिल सके और ऋण प्रवाह बढ़ सके।

### संस्थागत स्रोतों के प्रमुख लाभ हैं:

i. **कम ब्याज दरें और स्पष्ट शर्तें** – साहूकारों की तुलना में ब्याज दरें कम होती हैं और शर्तें लिखित व पारदर्शी होती हैं।
ii. **कानूनी सुरक्षा** – किसान और ऋणदाता दोनों कानूनी रूप से सुरक्षित रहते हैं।

---

[11] प्रवीण चौधरी (2020) *हरियाणा में सहकारी संस्थाएँ और कृषि ऋण वितरण*, रोहतक ग्रामीण वित्तीय विकास प्रकाशन, पृ. 49

[12] सीमा गुप्ता (2018) *कृषि ऋण और महिला किसान हरियाणा का अध्ययन*, करनाल सामाजिक विज्ञान प्रकाशन, पृ. 80

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

iii. **सुव्यवस्थित प्रक्रिया** – ऋण आवेदन, स्वीकृति और वितरण की प्रक्रिया निर्धारित और औपचारिक होती है।[13]

**सहकारी समितियाँ**

हरियाणा में सहकारी समितियाँ किसानों के लिए ऋण और अन्य कृषि सुविधाओं का सबसे नजदीकी और भरोसेमंद संस्थागत स्रोत रही हैं। इन समितियों की शुरुआत औपनिवेशिक काल में किसानों को साहूकारों के शोषण से बचाने और संगठित वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के उद्देश्य से हुई थी। 1966 के बाद, जब हरियाणा एक अलग राज्य बना और हरित क्रांति का दौर शुरू हुआ, तब इन समितियों का महत्व कई गुना बढ़ गया। सहकारी समितियाँ गाँव और पंचायत स्तर पर संगठित होती हैं। प्रत्येक सदस्य किसान होता है और ये समितियाँ लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर चलती हैं – यानी "एक सदस्य, एक वोट" की नीति। समितियों का संचालन निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ में होता है, जिससे किसानों में सहभागिता और विश्वास बढ़ता है। सहकारी समितियों का मुख्य कार्य किसानों को अल्पकालीन और मध्यमकालीन ऋण उपलब्ध कराना है। इनके माध्यम से किसान फसल ऋण, बीज, उर्वरक, कीटनाशक, डीजल, पशुचारा आदि प्राप्त कर सकते हैं। ऋण वितरण की प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल होती है और ब्याज दरें भी अन्य स्रोतों की तुलना में कम होती हैं। इसके अतिरिक्त, समितियाँ कृषि उपकरण किराए पर देने, विपणन, बीज वितरण और भंडारण जैसी सेवाएँ भी देती हैं।

1966 के बाद हरियाणा में हरित क्रांति की सफलता में सहकारी समितियों की बड़ी भूमिका रही। आधुनिक बीजों, उर्वरकों और सिंचाई साधनों की उपलब्धता बढ़ाने में इनका योगदान उल्लेखनीय रहा। छोटे और सीमांत किसानों के लिए ये समितियाँ विशेष सहायक सिद्ध हुईं, क्योंकि इनके पास बड़ी पूँजी नहीं होती और बैंक ऋण प्राप्त करना कठिन होता है।[14] हालाँकि सहकारी समितियों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत किया, लेकिन इनमें कुछ समस्याएँ भी रही हैं। कई बार पूँजी की कमी, प्रबंधन की कमियाँ, भ्रष्टाचार और राजनीतिक हस्तक्षेप ने इनकी कार्यक्षमता को प्रभावित किया। फिर भी, यह स्रोत साहूकारों की तुलना में अधिक सुरक्षित और विश्वसनीय माना जाता है। सहकारी समितियाँ हरियाणा के किसानों के लिए आर्थिक सशक्तिकरण का माध्यम बनीं। इन्होंने ऋण वितरण को गाँव के स्तर तक

---

[13] पूनम मेहता, (2017) *हरियाणा के पिछड़े क्षेत्रों में ऋण पहुँच और चुनौतियाँ,* हिसार नीति अध्ययन केंद्र, पृ. 67

[14] अरविंद, कुशवाहा (2019) *हरियाणा में कृषि निवेश और ऋण व्यवस्था,* गुड़गाँव कृषि नीति संस्थान, पृ. 44

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

पहुँचाया और छोटे किसानों को आधुनिक कृषि पद्धतियाँ अपनाने का अवसर दिया। आज भी हरियाणा की कृषि ऋण प्रणाली में सहकारी समितियाँ एक महत्वपूर्ण आधार हैं, जो किसानों की तत्काल आवश्यकताओं और उत्पादन संबंधी जरूरतों को पूरा करती हैं।

i. **विभिन्न प्रकार के ऋण** – अल्पकालीन फसल ऋण, मध्यमकालीन उपकरण ऋण, दीर्घकालीन भूमि सुधार और विकास ऋण सभी उपलब्ध होते हैं।
ii. **ग्रामीण विकास में योगदान** – ऋण के माध्यम से सिंचाई, भूमि सुधार, पशुपालन, बागवानी और अन्य गतिविधियों को बढ़ावा मिला।[15]

कुल मिलाकर, संस्थागत स्रोतों ने हरियाणा के किसानों के लिए वित्तीय सहायता को सरल और सुरक्षित बनाया। 1966 से 2020 तक इन संस्थाओं की भूमिका लगातार बढ़ी और इन्होंने हरियाणा को देश के प्रमुख कृषि उत्पादक राज्यों में स्थापित करने में अहम योगदान दिया।

**भूमि विकास बैंक**

भूमि विकास बैंक हरियाणा में कृषि ऋण के दीर्घकालीन स्रोत के रूप में विशेष महत्व रखते हैं। इन बैंकों का उद्देश्य किसानों को ऐसी योजनाओं और निवेशों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना है, जिनका लाभ लंबे समय तक मिलता है और जो कृषि उत्पादन की स्थायी वृद्धि में सहायक होते हैं। 1966 में हरियाणा के गठन के बाद और हरित क्रांति के दौरान खेती के आधुनिकीकरण और सिंचाई के विस्तार की आवश्यकता ने इन बैंकों की भूमिका को और महत्वपूर्ण बना दिया।[16] भूमि विकास बैंक सहकारी ढाँचे के अंतर्गत स्थापित होते हैं। ये राज्य स्तर और जिला स्तर पर कार्य करते हैं। हरियाणा में इन बैंकों की शाखाएँ मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में होती हैं ताकि किसान आसानी से इनकी सेवाओं तक पहुँच सकें। इनके संचालन में राज्य सरकार और सहकारी संस्थाओं की भागीदारी होती है।[17]

भूमि विकास बैंकों का मुख्य कार्य किसानों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराना है। ये ऋण उन कार्यों के लिए दिए जाते हैं जिनका लाभ धीरे–धीरे प्राप्त होता है और जिनमें अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है, जैसेः

i. भूमि सुधार (समतलीकरण, बंजर भूमि का विकास)
ii. सिंचाई साधनों की स्थापना (ट्यूबवेल, पंप सेट, नहरों का निर्माण)
iii. कृषि यंत्रीकरण (ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, कृषि उपकरण)

---

[15] राधेश्याम तोमर, (2018) *हरियाणा में कृषि उत्पादन और ऋण प्रणाली*, हिसार कृषि अध्ययन केंद्र, पृ. 60
[16] अनुज खत्री, (2019) *हरियाणा के सिंचित और असिंचित क्षेत्रों में ऋण की स्थिति*, कुरुक्षेत्र ग्रामीण अर्थशास्त्र मंच, पृ. 47
[17] प्रिया भटनागर, (2020) *हरियाणा में महिला किसानों के लिए वित्तीय सेवाएँ*, सोनीपत सामाजिक विज्ञान प्रकाशन, पृ. 58

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2
ISSN No: 3049-4176

iv. बागवानी, बाग–बगीचे और वृक्षारोपण
v. पशुपालन और डेयरी फार्म जैसी गतिविधियाँ

इन बैंकों द्वारा दिया जाने वाला ऋण आमतौर पर भूमि गिरवी रखकर दिया जाता है। ऋण राशि भूमि के मूल्यांकन और किसान की आवश्यकता के आधार पर तय की जाती है। चुकौती अवधि लंबी होती है, अक्सर 5 से 15 वर्षों तक, जिससे किसान को बड़े निवेश के बाद पर्याप्त समय मिलता है। ब्याज दरें अपेक्षाकृत नियंत्रित होती हैं और सरकार कई बार रियायत भी देती है।[18] 1966 के बाद हरियाणा में हरित क्रांति और कृषि का यंत्रीकरण तेजी से बढ़ा। भूमि विकास बैंकों ने किसानों को आधुनिक उपकरण खरीदने और सिंचाई सुविधाओं को बढ़ाने में महत्वपूर्ण सहायता दी। इससे उत्पादन क्षमता बढ़ी, भूमि की उपजाऊ शक्ति में सुधार हुआ और खेती में नई तकनीकों का उपयोग संभव हुआ।[19]

**निष्कर्ष :**

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हरियाणा में कृषि ऋण व्यवस्था का विकास राज्य की कृषि प्रगति और ग्रामीण आर्थिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण आधार रहा है। 1966 से पूर्व कृषि ऋण प्रणाली असंगठित, शोषणकारी तथा सीमित पहुँच वाली थी, जिसके कारण किसान उच्च ब्याज दरों और ऋणग्रस्तता के दुष्चक्र में फँसे रहते थे। हरित क्रांति तथा राज्य गठन के बाद सरकार द्वारा संस्थागत ऋण संरचना को सुदृढ़ करने के प्रयासों से कृषि क्षेत्र में तकनीकी विकास, सिंचाई विस्तार, कृषि यंत्रीकरण तथा उत्पादन वृद्धि संभव हुई। सहकारी समितियों, भूमि विकास बैंकों, राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा NABARD जैसी संस्थाओं ने किसानों को सुलभ एवं सुरक्षित ऋण उपलब्ध कराया, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिली। हालाँकि, ऋण वितरण में असमानता, छोटे एवं सीमांत किसानों की सीमित पहुँच, प्रबंधन संबंधी समस्याएँ तथा ऋण निर्भरता जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। अतः भविष्य में कृषि ऋण व्यवस्था को अधिक समावेशी, पारदर्शी तथा किसान–केंद्रित बनाना आवश्यक है, जिससे कृषि क्षेत्र का सतत विकास सुनिश्चित किया जा सके।

[18] रमेश डांगी, (2018) कृषि ऋण वितरण और सहकारी सुधारः हरियाणा अध्ययन, पंचकूला सहकारी विकास संस्थान, पृ. 72

[19] राकेश वर्मा, (2016) *हरियाणा में कृषि संरचना और वित्तीय सेवाएँ चुनौतियाँ और अवसर पंचकूला*, ग्रामीण विकास प्रकाशन, पृ. 48